द्वंद, पारंपरिक और आधुनिक का

समाज मे न तो सभी प्राचीन परंपराएं त्याज्य और नयी अनुकरणीय होती है न ही सभी प्राचीन परंपराएं अनुकरणीय और नयी विरोध करने योग्य। देश काल परिस्थिति अनुसार परंपराओं मे संशोधन, परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। आम तौर पर पुरानी पीढी का बहुमत पुरानी परंपराओं के साथ चिपके रहना चाहता है और नई पीढी का बहुमत उन्हे बदलने के लिये उतावला रहता है। पुरानी पीढी और नई पीढी के बीच का यह अन्तर्द्वंद हमेशा ही देखने को मिलता रहता है। इसी तरह भावना प्रधान और बुद्वि प्रधान लोगो के बीच भी स्वाभाविक अंतर होता है। भावना प्रधान लोग आम तौर पर संचालित होते है तथा बुद्धि प्रधान संचालक। चालाक लोग दो गुटो मे बंटकर इन भावना प्रधान लोगो को भावनाओ का शोषण करते रहते है । इन चतुर चालाक लोगो का एक समूह भावना प्रधान लोगो को पारंपरिक मान्यताओं के साथ चिपका कर रखना चाहता है तो दूसरा गुट उन्हे सब प्रकार से आधुनिक होने की ओर प्रेरित करता रहता है। जबकि सच बात यह है कि न सभी पुरानी प्रथाएं आख मूंदकर स्वीकार करने योग्य होती है न ही सबका विरोध करके आंख मूंदकर नयी प्रथाए स्वीकार करने की।

हम कुछ ऐसी पारंपरिक और आधुनिक प्रथाओ का विश्लेषण करें। लम्बे समय से जाति प्रथा एक संगठन के रूप मे चलती रही। जन्म के आधार पर जातियां संगठित हुई जो धीरे धीरे रूढ हो गई । जन्म अनुसार जाति के दुष्प्रभाव से समाज मे पारपरिक वर्ग बन गये। इन जातीय परंपराओं ने सामाजिक न्याय को बहुत नुकसान पहुंचाया । पारंपरिक जाति प्रथा को कमजोर करके आधुनिक ढांचे मे ढालना आवश्यक था। स्वामी दयानंद, महात्मागांधी आदि महापुरूष पारंपरिक जातिवाद को आधुनिक स्वरूप देने के लिये निरंतर प्रयत्नशील थे किन्तु चालाक अम्बेडकर समूह ने इस पारंपरिक कुव्यवस्था से लाभ उठाने के उद्देश्य से जातिवाद को लगातार मजबूत किया। अम्बेडकर शिष्यो के लगातार प्रयत्नो के बाद भी जातिवाद लगातार कमजोर हो रहा है किन्तु जिस जातिवाद को दस बीस वर्षो मे ही कमजोर हो जाना चाहिये था वह साठ वर्ष बाद भी आंशिक रूप से ही कमजोर हो पाया है।

दूसरी ओर धर्म लम्बे समय से कर्तब्य प्रधान रहा । हजारों वर्षो से धर्म कभी संगठन के रूप मे नही रहा। धर्म सामाजिक व्यवस्था मे सहायक रहा, बाधक नहीं । इस्लाम ने सबसे पहले संगठन का स्वरूप लेकर सामाजिक एकता को नुकसान पहुंचाना शुरू किया। संगठित इस्लाम और इसाइयत के खनी टकराव जग जाहिर है। किन्तु दोनो ही विदेशी उदभव के होने से भारत के धार्मिक स्वरूप पर ज्यादा प्रभाव नही डाल सके। यहां तक कि इस्लाम और इसाइयत कई सौ वर्षो तक भारत को गुलाम बनाकर रखने के बाद भी यहां की पारंपरिक धर्म भावना को ज्यादा कमजोर नहीं कर सकें किन्तु स्वतंत्र भारत मे संघ परिवार शिवसेना बजरंग दल आदि ने राजनैतिक उद्देश्यों से धर्म का दुरूपयोग करना शुरू किया। परिणाम सबके सामने है कि धर्म का स्वरूप कर्तब्य प्रधान के पारंपरिक स्वरूप से हटकर आधुनिक टकराव प्रणाली की ओर बढता चला गया। इस्लाम तो कभी धर्म प्रधान रही ही नहीं और इसाइयत भी आंशिक रूप से ही धर्म के प्राचीन अर्थ को मानती रही किन्तु हिन्दू भी धीरे धीरे धर्म के विकृत स्वरूप की ओर बढता चला गया। धर्म कभी पूजा पद्धति मे शामिल नही रहा। किन्तु यदि मान भी ले कि धर्म का संशोधित स्वरूप पूजा पद्धति से जुड गया तब भी भारत मे धर्म कभी संख्या बल की छीना झपटी मे शामिल नही रहा। यहां तक कि आज भी हिन्दुत्व अपनी उसी पुरातन धारणा से चिपका हुआ है जिसमे बाहर के धर्मवालो को शामिल होने की स्वतंत्रता तक नही है भले ही अपने लोग दूसरी तरफ कितने भी क्यो न चले जाए। यह मूर्खता तो कहीं जा सकती हैं किन्तु धूर्तता नही कही जा सकती। स्पष्ट है कि मूर्खता धूर्तता से कम खतरनाक होती है। स्वतंत्रता के बाद भारत मे धर्म के नाम पर जो स्वरूप विकसित हुआ वह संख्या बल की छीना झपटी मे बढने लगा। यह तो हिन्दुत्व की गहरी आस्था और विश्वास का परिणाम रहा कि संघ परिवार के लाख प्रयत्नो के बाद भी भारत का हिन्दू संख्या बल की छीना झपटी मे शामिल नही हुआ। धर्म का आधुनिक स्वरूप उसे नही बदल सका। मूर्तिपूजा, अन्धविश्वास सरीखे अवैज्ञानिक पुरातन पंथी विचार हिन्दुओ को छोडने चाहिये थे किन्तु वह पारंपरिक धार्मिक विचारो से इस सीमा तक चिपका रहा कि उसने धर्म मे आधुनिक हानिकर विचारो के साथ साथ लाभदायक आधुनिक विचारो की भी राह नही पकडी।

पारपरिक और आधुनिक का सर्वाधिक प्रभाव परिवार व्यवस्था पर दिखा। भारतीय व्यवस्था त्रिस्तरीय रही है जिसमें व्यक्ति परिवार और समाज की समान भूमिका रही है। पश्चिम के देशो मे व्यक्ति , सरकार और समाज की त्रिस्तरीय व्यवस्था रही है। इसमे इन तीनो को समान अधिकार प्राप्त है। इस्लाम मे व्यक्ति परिवार और धर्म की भूमिका रही हैं इसमे व्यक्ति की भी भूमिका नगण्य ही होती है और समाज तो होता ही नही । साम्यवाद मे न व्यक्ति होता है न परिवार न धर्म न समाज। वहां तो सिर्फ सरकार ही अकेली सबकुछ है।

इस संबंध मे हम सिर्फ भारतीय व्यवस्थ की चर्चा करे तो यहां पारंपरिक और आधुनिक के बीच का द्वद बिल्कुल स्पष्ट दिख सकता है। भारतीय पारंपरिक व्यवस्था मे अपवादो को छोडकर लगभग पूरो तरह परिवार अनिवार्य रूप से व्यवस्था का अंग रहा है। इस्लाम और अंग्रेजो की लम्बी गुलामी के बाद भी यह व्यवस्था लगभग चलती ही रही किन्तु स्वतत्रता के बाद यहां व्यक्ति सरकार ओर समाज की आधुनिक व्यवस्था मजबूत होनी शुरू हुई। चूंकि पाश्चात्य व्यवस्था से पूरी तरह प्रभावित पण्डित नेहरू और अम्बेडकर स्वतंत्रता के बाद आधुनिक व्यवस्था के नायक के रूप मे सामने आये इसलिये उन्होने व्यक्ति, सरकार और समाज को तो सवैधानिक मान्यता दे दी किन्तु परिवार व्यवस्था को संविधान से बाहर कर दिया। इन दोनो ने स्त्री और पुरूष बालक या वृद्ध को परिवार का सदस्य होते हुए भी उन्हे व्यक्ति के रूप मे संवैधानिक अधिकार प्रदान कर दिये जबकि परंपरागत मान्यतानुसार परिवार मे शामिल होते ही व्यक्ति के मौलिक अधिकार तो सुरक्षित रहते है किन्तु संवैधानिक अधिकार परिवार के साथ जुड जाते है । चूंकि ये दोनो लोग न मौलिक और न संवैधानिक अधिकारो का अंतर जानते थे न उन्होने कभी यह जानने का प्रयत्न किया, इसलिये आज तक भारत मे यह अव्यवस्था बनी हुई है।

परिणाम हुआ कि भारत की पारंपरिक परिवार व्यवस्था धीरे धीरे कमजोर होकर आधुनिक व्यक्ति केन्द्रित व्यवस्था की ओर सरकने लगी। अंग्रेजो ने स्वतंत्रता के बहुत पहले ही गुरूकुल प्रणाली की जगह मैकाले शिक्षा पद्धति को प्रोत्साहित करना शुरू कर दिया था जिसका हल्का प्रभाव आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रोत्साहन के रूप मे लगातार दिख भी रहा है किन्तु पण्डित नेहरू और अम्बेडकर की भूमिका परिवार प्रणाली को कमजोर करने मे बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण रही। पारंपरिक शिक्षा पद्धति मे चरित्र का महत्व धन की अपेक्षा कई गुना ज्यादा था। आधुनिक प्रणाली मे चरित्र की जगह धन महत्वपूण हो गया। पारंपरिक पद्धति मे व्यक्ति पर परिवार का तथा परिवार पर समाज का अनुशासन था। अब सारा अनुशासन समाप्त होकर व्यक्ति और सरकार के बीच शासन के रूप मे तब्दील हो गया।

यदि हम आकलन करे तो परिवार मे रहते हुए भी स्त्री और पुरूष के बीच पारिवारिक संबंधो मे संदेह की दीवार चौडी से चौडी होती जा रही है। परंपरागत परिवारों मे यह दीवार धीरे धीरे चौडी हो रही है तो आधुनिक परिवारों मे बहुत तेज गति से। पारंपरिक परिवारो की महिलाएं आज भी सामाजिक अनुशासन को लगभग स्वीकार कर रही है। जबकि आधुनिक महिलाएं तो ऐसे सामाजिक अनुशासन की खिल्ली उडाने को ही अपनी योग्यता का मापदण्ड समझकर चल रही है। यह सच है कि सम्पूर्ण महिलाओ मे लगातार पारंपरिक महिलाओ का प्रतिशत घट रहा है और आधुनिक महिलाओ का बढ रहा है किन्तु नेहरू अम्बेडकर संस्कृति के लाख प्रयत्नो के बाद भी बढते बढते आधुनिक महिलाओं का प्रतिशत दो ढाई से ज्यादा नही बढ पाया है। महिलाओ को हर प्रकार का आरक्षण तथा प्रोत्साहन के बाद भी सार्वजनिक मंचो पर मुश्किल से दो तीन प्रतिशत महिलाएं ही पहुंच पाती हे। वे भी ऐसे मंचो पर सिर्फ महिला अधिकर का रटा रटाया रोना रोने के अलावा कुछ और नही बोलती। ये दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएं सार्वजनिक जीवन मे इस प्रकार स्वयं को स्थापित करती है जैसे कि वे अंठान्नवे प्रतिशत पारंपरिक महिलाओ का प्रतिनिधित्व करती हो जबकि सच्चाई यह है इन आधुनिक महिलाओ के विषय मे पारंपरिक महिलाओ के मन मे विपरीत धारणा ही भरी रहती है।

परिवार व्यवस्था की पारंपरिक प्रणाली को कमजोर करके आधुनिक व्यक्ति केन्द्रित प्रणाली का आधुनिक परिवारो को भौतिक लाभ बहुत हो रहा है। जहां संसद मे पहले पांच सौ परिवारा का प्रतिनिधित्व था वहीं अब धीरे धीरे तीन साढे तीन सौ परिवारो तक सिमट गया है । महिला आरक्षण इस अनुपात को और बिगाडेगा। युवा आरक्षण और वृद्धि करेगा। यही हाल सरकारी नौकरियों का हो रहा है। महिलाओ को प्रोत्साहन सरकारी नौकरियो मे भी लाभ के पदा पर परिवारो के बीच सिमटने का सफल प्रयास कर रहा है। मुठोभर आधुनिक परिवार सम्पूर्ण भारत के अधिकतम लाभ को अपने परिवार तक सीमित करने का प्रयत्न कर रहे है। प्राचीन काल मे ब्राम्हण क्षत्रिय वैश्य परिवार की मान्यता थी कि वे महिला और पुरूष के लाभ के अलग अलग संसाधन परिवार तक सीमित नहीं करेंगे। किन्तु आज तो परिवार तक सीमित करने की होड सी मची है। यदि सामाजिक संसाधनो की अपने अपने परिवार तक असीमित लूट की छूट ही आधुनिकता है तो हमे आधुनिकता और परंपरागत के लाभ हानि पर फिर से विचार करना चाहिये। एक परिवार को एक लाभ के पद तक सीमित करना चाहिये। देखिये कि किस तरह परिवारो का टूटना रूक जाता है। परिवारो को संवैधानिक मान्यता दीजिये, अधिकार दीजिये। पश्चिम का अंधानुकरण सिर्फ लाभ ही लाभ नही देता । वह यदि कही लाभ देता है तो कही हानि भी दे सकता है। यदि यह अंधानुकरण व्यक्ति और परिवार को भौतिक लाभ दे रहा है तो समाज व्यवस्था को बहुत अधिक नुकसान भी पहुंचा रहा है। दोनो स्थितियां स्पष्ट दिख रही है जो चिन्ता का विषय है।

कुल मिलाकर स्पष्ट है कि परंपरागत और आधुनिकता के बीच द्वद समाप्त होकर सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है । न तो परंपरागत का अन्ध समर्थन उचित है न आधुनिक का अन्ध प्रोत्साहन । जहां जातिवाद के नाम पर परंपरागत मान्यताओ पर पुनविचार की आवश्यकता है वही परिवार व्यवस्था की कीमत पर आधुनिकता की भौतिकता के प्रोत्साहन पर भी विचार करना चाहिये। समाज मे धूर्त लोग दो गुटो मे बंटकर हमारी भावनाओ का दुरूपयोग करना चाहते है । ऐसे धूर्त लोग अपने उद्देश्य मे सफल न हो, यह हम आप सबका कर्तब्य है । हम न तो स्वयं को परंपरागत का प्रचारक घोषित होने दे न ही आधुनिकता का वकील। हम हर घटना को गुण दाष के आधार पर विवेचना करने की आदत डाले। किसी भी स्थिति मे अतिवादी होना घातक है । स्वार्थी तत्व अतिवादी भावनात्मक मुद्दे उछालकर आपकी परंपरावादी या आधुनिक भावनाओ का लगातार लाभ उठाने का प्रयत्न भी करते रहते है तथा सफल भी हो जाते है। यह आपकी सतकता होगी कि आप ऐसे संगठनो से दूरो बनाकर रखे । यदि आपने प्रत्येक विषय पर गुण दोष के आधार पर विचार मंथन करके निष्कर्ष निकालने की आदत डाल ली तो समाज की वर्तमान अनेक समस्याओ का समाधान सहज सरल हो सकता है।

वर्तमान राजनैतिक बदलाव और राजनैतिक दल

कांग्रेस पार्टी के राजनैतिक चरित्र मे मौलिक बदलाव दिखा। कांग्रेस पार्टी दुराग्रही ममता को समझाने का प्रयत्न कर रही थी जो बिल्कुल असंभव था। बंगाल का चुनाव जीतते ही ममता बनर्जी प्रधानमंत्री की कुर्सी के निकट अपने को मानन लगी थी । आप जानते है कि दो तीन वर्ष पूर्व मायावती भी ऐसे ही हवाई घोडे पर सवार थी जैसे आज ममता बनर्जी है। वैसे तो यू पी का चुनाव जीतते ही मुलायम भी प्रधानमंत्री को कुर्सी की ओर ललचाई नजरो से देखने लगे है किन्तु मुलायम सिंह जी ममता और माया की अपेक्षा कुछ ज्यादा घाघ माने जाते है। जब ममता ज्यादा ही परेशान करने लगी तो कांग्रेस पार्टी ने पैतरा बदला। कांग्रेस पार्टी भ्रष्टाचार के मुद्दे पर लगातार घिरतो जा रही थी । सलमान खुर्शीद की तो बलि भी चढाई जा सकती थी किन्तु जब राबर्ट वाड्रा, राहुल गांधी तथा स्वयं सोनियां तक की पोल खुलने लगी तो कांग्रेस ने अन्तिम वार किया। वह अपनी गिरती विश्वसनीयता का आकलन करके चुनावो से डर रही थी किन्तु उसने मरता क्या न करता की स्थिति भांपकर चुनावो का खतरा उठा लिया। देश की अर्थ व्यवस्था बिगडती जा रही थी। विकास दर घट रही थी। रूपया लगातार कमजोर हो रहा था। सेन्सेक्स गिर रहा था। जो विपक्ष लगातार आर्थिक सुधारो को रोक रहा था वही आर्थिक गिरावट के लिये सरकार को दोष दे रहा था। सरकार ने हिम्मत दिखाई और एकाएक आर्थिक सुधारो की पहल करके एक भूचाल ला दिया। सबसे पहले खुदरा ब्यापार मे विदेशो निवेश की योजना घोषित हुई । विरोध मे बहुत तेज तूफानी हवाएं चली किन्तु सरकार के पैर नही डगमगाए क्योकि वह तो चुनावो तक का खतरा उठाने को तैयार थी। उसने तत्काल ही डीजल तथा गैस सिलेन्डर का दूसरा बम फेका। फिर विपक्ष ने भारत बंद सरीखे कुछ नाटक किये तो सरकार ने कैस सब्सीडी का तोसरा बम फेका और दिखा कि विपक्ष के पैर डगमगाने लगे है तो उसने बैकिंग क्षेंत्र आदि की कुछ और घोषणाएं करके विपक्ष को आत्म समर्पण के लिये मजबूर कर दिया। कांग्रेस पार्टी की सुनियोजित योजना के सामने विपक्ष चारो खाने चित था। जो विपक्ष कांग्रेस को आम चुनावो के लिये ललकार रहा था वहीं विपक्ष आम चुनाव की कल्पना से ही थर थर कांपने लगा। किसी की हिम्मत नही पडी कि ममता दीदी के अविश्वास प्रस्ताव को सदन पटल तक तो आने दे। लडखडाते कदमो से विपक्ष ने एफ डी आई तक अपनी शक्ति को तौलने को हिम्मत की किन्तु उसका भी परिणाम ऐसा हुआ कि अगले चुनाव तक विपक्ष मुंह खालने की हिम्मत नही करेंगा। अब न कहीं मंहगाई का शोर सुनने को मिल रहा है न ही कोयला घोटाले पर कोई प्रधानमंत्री का त्यागपत्र मांग रहा है। अरविन्द केजरीवाल भी अभी तेल और तेल की धार ही देख रहे है । जो काम सरकार वर्षो से नही कर पा रही थी वह उसने एक झटके मे सफलता पूर्वक कर दिखाया । जो भाजपा उछल कूद कर रही थी उसे अब स्वयं दिखने लगा है कि वह बहुत पीछे खिसक गई है।

सरकार को लगा कि बाजी उसके हाथ आ रही है। उसने एकाएक कैश सब्सीडी की घोषणा कर दी। वैसे तो सरकार को कैश सब्सीडी घोषित करनी ही थी किन्तु उसने वर्तमान मौसम को सर्वाधिक अनुकूल समझा। कैश सब्सीडी एक ऐसा मुद्दा है जिसका हर भारतीय स्वागत ही करेगा। इससे भ्रष्टाचार के अवसर घटेंगे। सब्सीडी उपयुक्त व्यक्ति तक अधिक सुविधाजनक तरीके से पहुंच सकेगी। धीरे धीरे सब्सीडी घटाना आसान होगा । आधार परिचय पत्र और कैस सब्सीडी की मांग हम बहुत पुराने समय से करते रहे है। हमने बीस वर्ष पूर्व ही

भारत के प्रस्तावित संविधान मे दोनो प्रावधान शामिल किये थे। इतनी अच्छी मांग को भी मानने मे सरकार को बीस वर्ष लग गये। काग्रेस पार्टी इससे सहमत तो थी किन्तु वह इसका राजनैतिक लाभ उठाने के लिये उपयुक्त अवसर की तलाश मे थी। उसने ठीक अवसर पाकर कदम उठाया । कांग्रेस पार्टी को जिस तरह चुनावो मे नरेगा का लाभ मिला उसी तरह उसे कैश सब्सीडी योजना का भी लाभ मिलने वाला है। कांग्रेस पार्टी की हार्दिक इच्छा रही है कि विपक्ष और खासकर भाजपा कैश सब्सीडी योजना का विरोध करें। मै पूरी तरह आश्वस्त हूॅ कि भाजपा विरोध करेगी ही क्योंकि भाजपा ने अपने सम्पूर्ण कार्यकाल मे कभी किसी योजना की पहल नही की। उसने सिर्फ प्रतिक्रिया ही की है। वह प्रतिक्रिया ही करेगी। यदि वह नही भी करती तो साम्यवादी उससे यह काम करा देंगे। भाजपा को चाहिये था कि वह कैश सब्सीडी योजना को हर क्षेत्र मे लागू करने की मांग करती। सरकार उतना कर नही पाती और उसका लाभ भाजपा को मिलता लेकिन इस मामले मे भाजपा ठीक समय पर ठीक निर्णय नही कर सकी। उल्टे उसने चुनाव आयोग मे जाकर योजना को रूकवाने का प्रयास किया। परिणाम क्या हुआ यह आपके सामने है। भाजपा जानती है कि अगले चुनावो मे कैश सब्सीडी मुद्दा कांग्रेस पार्टी के लिये सर्वाधिक प्रभावशाली परिणाम देगा। यही सोचकर उसने विरोध करने की कोशिश की जो उसका एक गलत कदम था।

इसी बीच सरकार ने एफ डी आई को हाथ मे ले लिया। एफ डी आई कैश सब्सीडी तथा आधार कार्ड के समान निर्विवाद मुद्दा नही था। एफ डी आई एक ऐसा कदम है जिसके पक्ष और विपक्ष मे अनेक तर्क ह। यह भारत की अर्थ व्यवस्था को नकली समाजवाद से पिंड छुडाकर पूंजीवाद की दिशा मे एक कदम आगे बढा देगा किन्तु इससे वास्तविक समाजवाद और पीछे चला जायगा। अर्थ व्यवस्था का केन्द्रीयकरण घातक ह किन्तु अर्थव्यवस्था का सत्ता के पास केन्द्रीयकरण और भी ज्यादा घातक है। उसे राज्य के हस्तक्षेप से तो पूरी तरह मुक्त होना ही चाहिये। आर्थिक मामलो मे खुली प्रतिस्पर्धा आवश्यक है। एफ डी आई ऐसी खुली प्रतिस्पर्धा के अवसर देगा । ऐसी खुली प्रतिस्पर्धा से कमजोर वर्ग हार थक कर बाहर हो जायगा और उसकी जगह बडे पूंजीपति ले लेंगे यह सहो है। किन्तु मै आज तक यह नही समझ सका कि एफ डी आई के आने से कौन सा वर्ग परेशान होगा? एफ डी आई के आने से सबसे ज्यादा वह उधोगपति समूह परेशान होगा जिसने पिछले कई वर्षो से भारत के सारे ग्रामीण उद्योगों को निगल लिया है । छोटी छोटी मछलियों को निगल निगल कर हुई मोटी मछलियों के सामने यदि एफ डी आई खतरा बनती है तो इसकी चिन्ता किसे होने चाहिये। एफ डी आई के आन से भारत की अर्थ व्यवस्था मजबूत होगी। भारत की विकास दर पर अच्छा प्रभाव पडेंगा। किसान भी लाभान्वित होंगे और उपभोक्ता भी। बडे व्यापारी तो तबाह होगे ही किन्तु छोटे व्यापारियो पर भी कुछ प्रभाव तो पडेगा हीं। आर्थिक विषमता बढेगी। कुल मिलाकर देश को लाभ होगा और समाज को हानि। एफ डी आई को रोकना किसी भी रूप मे समस्या का समाधान नही है। समाधान है एफ डी आई से प्रतिस्पर्धा के लिए मार्ग खोजना । यह संभव है किन्तु न तो इस संबंध मे सरकार की कोई रूचि है न विपक्ष की। एफ डी आई का आना न आना पूरी तरह राजनैतिक फैसला है।

विपक्ष खासकर भाजपा को आपत्ति है कि सरकार ने सदन मे विश्वास प्राप्त करने के लिये अनैतिक जोड तोड की। मै अब तक नही समझा कि भाजपा ने कौन सी नई बात कहो है? जब भारतीय राजनीति मे नैतिकता को बिल्कुल बाहर कर दिया गया हो और सरकार ने वैसे कदम का सहारा लिया तो कोई खास बात नही। भारतीय जनता पार्टी ने संसद को कई दिनो तक बाधित किया । मै नही समझा कि संसद बाधित करना कौन सी नैतिकता थी या कौन सी बुद्धिमानी? फिर मतदान पर इतना दबाव बनाना भी क्यो आवश्यक था? कांग्रेस पाटी ब्लैक मेल होने से अन्त तक बचती रही किन्तु भाजपा ने उसे मजबूर कर दिया कि वह अपनी सरकार को बचाने के लिये ब्लैक मेलरो से समझौता करें । यदि मायावती मुलायम सिंह को कोई राजनैतिक लाभ पहुंचाने का किसी ने सर्वाधिक काम किया है तो वह है भाजपा । माया और मुलायम दिल से धन्यवाद देगे कि भाजपा बार बार ऐसे वातावरण बनावे जिससे सरकार इनके समक्ष ब्लैक मेल होती रहे।

मैने पूरी बहस टीवी पर सुनी । सुषमा स्वराज की भाषा प्रभावकारी थी किन्तु तर्क कमजोर थे । कपिल सिब्बल ने जिस तरह सुषमा स्वराज की बखिया उधेडी वह सुनने लायक थी । कपिल सिब्बल का भाषण तर्क पूर्ण भी था और प्रभावोत्पादक भी। किन्तु अन्य नेताओ के भाषण सुनकर ऐसा लगा जैसे एक महफिल मे दो कव्वाल नकली नोक झोक करके भीड का मनोरंजन करते रहते हैं। एफ डी आई के मुद्दे पर संसद मे चली नोक झोक भी श्रोताओ को ऐसी महफिल का आनंद दे रही थी। कोई सांसद लौकी के बराबर आलू पैदा कर रहा था तो कोई ऐसे काल्पनिक आलू की खिल्ली उडाकर ही संसद मे विचार मंथन का रूप दे रहा था। हमारी संसद संविधान मे मनमाने संशोधन करके समाज को मजबूर करती है कि वह ऐसी महफिल को ही विचार मंथन का केन्द्र कहे।

अब यह स्पष्ट दिखने लगा है कि कांग्रेस पार्टी ने जो खतरा उठाया था वह जंग जीत ली है। मध्यावधि चुनावो का तो खतरा प्री तरह टल ही गया है। अब तो लगता है कि दो हजार चौदह के आम चुनावो से भी भाजपा की चुनौतो लगभग समाप्त हो गई है । भाजपा के समक्ष एक ही मार्ग है कि वह जेडीयू, टीम अरविन्द केजरीवाल आदि के साथ मिलकर कोई नई रणनीति बनावे अन्यथा यदि इसी तरह भूल पर भ्ल होती रही तो भाजपा और संघ बैठकर समीक्षा ही करते रह जायेगे और बाजी हाथ से निकल जायगी।

श्री मनोज दुबलिश, मेरठ उत्तर प्रदेश

प्रश्न– ज्ञान तत्व 256 वे अंक मे अंतिम पृष्ठ पर सूचना प्रकाशित करते हुए आपने संसद को जेल व संविधान को भगवान बताया। अगर संसद जेल है तो जेल मे अपराधी सजा काटने को जाता है, लेकिन वहां पर नामित या चयनित होकर जाने वाले सदस्य तो एक बार जाकर आजीवन देश पर भार बन जाते है तो वह जेल कैसे है? रही भगवान रूपी संविधान की बात तो उपमा देते समय शब्दावली का प्रयोग सदैव सार्थक होना अनिवार्य है। आप मुनि भी हैं, अतः उतना सदैव स्मरण बना रहना चाहिये कि जब भगवान तुल्य कोई वस्तु है ही नही तो उपमा कैसे दी जा सकती है। पत्रकारिता की एक मर्यादा है और उसी मर्यादा के अनुसार शब्दो का प्रयोग होना अच्छा लगता है। अगर आपकी निगाह मे संसद जेल खाना है तो वहां सदस्यो को चुनकर कौन भेजता हैं? जेल खाने मे कैदियो को सजा दिलवाई जाती है और उनको सुधारने की प्रक्रिया भी अपनाई जाती है तो ऐसे मे संसद को जेल खाना कहना क्या तर्क संगत लगता है? आपसे निवेदन है कि भविष्य मे कभी भी ऐसी शब्दावली सम्पादक स्तर से प्रकाशित न होने पाये जिससे जनमानस की भावना को ठेस पहुंचती हो और फिर आप भारतीय जनतंत्र की ओर से कोई न्यायाधीश भो नियुक्त नही हुए है। वैचारिक मतो के आदान प्रदान से ज्यादा आपको महत्व नही दिया जा सकता। अतः आप अपनी बुद्धि को ठीक ढ़ग से ही प्रयोग करें। आपकी पत्रिका संसद को भेजी जा रही है ।

उत्तर– ज्ञान तत्व दो सौ छप्पन के अंत मे संविधान और संसद के संबंध मे एक टिप्पणी छपी जिस पर आपको गंभीर आपत्ति है। आपकी भावनाओं को ठेस पहुंची। मुझे ऐसा लगा कि मेरी टिप्पणी सार्थक रही क्योकि आप जैसे कुछ संसदीय लोकतंत्र प्रेमियों को पहली बार झटका लगा। जेल खाने कई प्रकार के होते है। कंस की जेल भी एक ऐसा ही जेलखाना था जो भगवान कृष्ण के जन्म को रोकने के उद्देश्य से बनाया

गया था। आवश्यक नहीं कि जेल सिर्फ सुधारने के ही काम आवे। आपात्काल में मैं और मेरे जैसे हजारो निर्दोष उन्नीस माह तक जेल मे बंद रहें। क्या हमलोगो को सुधारने के उददेश्य से जेल मे रखा गया था अथवा अपनी तानाशाही चलाने के उद्देश्य से ।

आपको संविधान की तुलना भगवान से करने पर भी भारी आपत्ति है। मै संविधान को भगवान नही कहता। मैने तो लोकतंत्र और संसद की चर्चा मे संविधान को भगवान कहा था न कि धार्मिक जीवन मे। यदि आपको बुरा लगा तो मेरी कोई गल्ती नही। आपने ज्ञान तत्व संसद को भेजकर अच्छा किया। संसद इस संबंध मे जो भी निर्णय करेगी वह मै स्वीकार करूंगा क्योकि मेरा उद्देश्य न संसद का अपमान करना है न संसद के विरूद्ध कोई आंदोलन करना । मेरी तो सिर्फ इतनी ही इच्छा है कि संसद के दो भाग करके दूसरे भाग का नाम लोक संसद कर दिया जाय। संविधान संशोधन का अधिकार लोक संसद को दे दें । आपके निर्णय के बाद संसद जब निर्णय करेगी तब तक म कोशिश करूंगा कि ज्ञान तत्व की उक्त अपील छपती रहे। जिससे आप अपनी नाराजगी दूर करके विचार मंथन मे शामिल हो सकें। आपने संसद को जनता द्वारा चुनी हुई इकाई कहकर अपनी गुलाम मानसिकता का परिचय दिया है। संसद समाज की न मैनेजर होती है न प्रबंधक । वह तो संरक्षक होती है जो अपने अधिकार स्वयं तय कर लेते है और स्वयं के चुने जाने की शर्ते भी वे ही तय करते है। उनकी बनाई हुई शर्तो के परिपालन मे समाज उन्हे चुनने की खानापूर्ति करता है और यदि कहीं उन्हे दिक्कत होती है तो वे एक पक्षीय रूप से उन नियमो को संशोधित कर देते है। फांसी की सजा प्राप्त व्यक्ति को जल्लाद चुनने की आजादी पर खुश रहने वाले आप जैसे गुलामो को अब समझना चाहिये कि संसद और समाज के बीच का संबंध अब मालिक और गुलाम से ज्यादा नही बचा है जिसे अब मालिक और प्रबंधक के रूप मे बदलना चाहिये।

आपने वर्तमान संसदीय व्यवस्था पर ज्यादा ही विश्वास प्रकट किया है । अभी संसद मे एफ डी आई पर बहस हुई । आपने भी सुनी होगी। एक दो सांसदो की बातो मे तो पचास प्रतिशत से ज्यादा एफ डी आई पर तर्कपूर्ण चर्चा थी। अन्यथा अन्य लोागे की चर्चा तो वैसी ही थी जैसे एक महफिल मे दो कव्वाल नकली नोक झोक करके भीड का मनोरंजन करते रहते हैं। एफ डी आई के मुद्दे पर संसद मे चली नोक झोक भी श्रोताओ को ऐसी महफिल का आनंद दे रही थी। कोई सांसद लौकी के बराबर आलू पैदा कर रहा था तो कोई ऐसे काल्पनिक आलू की खिल्ली उडाकर ही संसद मे विचार मंथन का रूप दे रहा था। हमारी संसद संविधान मे मनमाने संशोधन करके समाज को मजबूर करती है कि वह ऐसी महफिल को ही विचार मंथन का केन्द्र कहे। उपर से आप जैसे एजेन्ट भय दिखाते है कि यदि किसी ने जेलखाना या महफिल कहा तो अवमानना के लिये भी तैयार रहे। मेरा आपसे निवेदन है कि आप इस ज्ञान तत्व की कापी भी संसद को भेज दें जिससे संसद पूरा निर्णय एक ही बार मे दे सके क्योकि मैने आपसे पूर्व मे ही स्पष्ट कर दिया है कि मै संसद के निर्णय की अवहेलना नही करूगा। संसद का निर्णय आने दीजिये।

श्री कैलाश बिहारी श्रीवास्तव, रायबरेली, उत्तर प्रदेश

विचार– ज्ञान तत्व अंक दो सौ छप्पन एक नई सोच पैदा कर गया किन्तु इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला कि गरीब ग्रामीण, श्रमजीवी , किसान कब इतना समझने योग्य हो पायेगा कि व्यवस्था परिवर्तन को समझ सके? स्वाभाविक है कि इन्हे तैयार करने का दायित्व कुछ मुठी भर संस्कारित चरित्रवान व्यक्तियों को उठाना पडता है जो अपने त्याग बलिदान के बल पर नई लहर पैदा करने का प्रयास करते हैं। अठारह सौ सत्तावन के प्रभाव से ही तो भगत सिंह, खुदीराम बोस, राजगुरू, आदि ने स्वतंत्रता संघर्ष की पहल की। यह अलग बात है कि महात्मा गाधी ने इन बलिदानियों का साथ नही दिया। गांधी ने तो सुबाष चंद्र बोस की भी अवहेलना करते हुए पदलोलुप पण्डित नेहरू को आगे बढाया । नेहरू की अपेक्षा सुबाष चंद्र बोस अधिक स्पप्ट थे, त्यागी थे, दानी थे जबकि नेहरू सुबाष जी की अपेक्षा ज्यादा भौतिकवादी।

आज अरविन्द केजरीवाल व्यवस्था परिवर्तन के प्रतीक बनकर उभर रहे हैं। आज हमारा रायबरेली भी इंडिया अगेन्स्ट करप्शन के कार्यकर्ता अर्चना श्रीवास्तव रामूदादा आदि कांग्रेस के एकाधिकार को सफल चुनौती दे रहे है। अरविन्द आदि ने मिलकर वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था को जो चुनौती दी ह उससे दीमक की तरह चाट रहे राजनेता बौखला गये हैं। आवश्यकता है कि गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी , किसान तक यह आवाज पहुंचे।

उत्तर– नेहरू और सुभाष के चरित्र की तुलना नही की जा सकती क्योकि सत्ता के बाद की परीक्षा मे नेहरू ही प्रत्यक्ष शामिल थे। तब तक सुबाष बाबू की मत्यु हो चुकी थी। स्वतंत्रता के बाद सुबाष चंद्र बोस नेहरू से अच्छे होते या बुरे यह कल्पना करना ठीक नहीं। वैसे भी सुबाष बाबू की अपेक्षा नेहरू पूर्व से ही ज्यादा भौतिक वादी होते हुए भी अधिक लोकतांत्रिक थे दूसरी ओर सुबाष बाबू अधिक आदर्शवादी होते हुए भी तानाशाही के पक्षधर थे। अतः क्या अच्छा है और क्या बुरा यह निश्चित नहीं।

आपने लिखा कि गांधी ने क्रान्तिकारियों का साथ नही दिया। मेरे विचार से यदि यह कहा जाय कि क्रान्तिकारियो ने गांधी का साथ नही दिया तो क्या गलत है? यदि गांधी अपना आंदोलन बंद करके क्रान्तिकारियों के साथ हो जाते तो परिणाम क्या होता यह बिल्कुल अस्पष्ट है किन्तु क्रान्तिकारी यदि अपना मार्ग छोडकर गांधी मार्ग पकड लेते तो स्वतंत्रता कुछ और आसान होती यह निश्चित है। स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वालों का नाम लेकर वर्तमान समय मे हिंसा का पक्ष मजबूत करना ठीक नही। स्वतंत्रता पूर्व सुबाष चंद्र बोस या भगतसिंह ने जो किया वह लक्ष्य उचित था मार्ग पर बहस हो सकती है किन्तु आज जो लोग हिंसा के पक्षधर है उनका मार्ग तो गलत है ही, लक्ष्य भी गलत है। स्वतंत्रता के पूर्व हम किसी ऐसी तानाशाही के गुलाम थे जिससे मुक्ति का कोई लोकतांत्रिक संवैधानिक मार्ग हमारे पास उपलब्ध नहीं था किन्तु आज वह मार्ग उपलब्ध है । अतः यदि आज सुभाष बाबु या भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद भी लोकतंत्र मे वैसा करते तो उन्हे समाज मे सम्मान न मिलकर अपयश ही प्राप्त होता। मैने अपने सम्पूर्ण जीवन काल मे हिसा की अपेक्षा अहिंसा के मजबूत परिणामों के साथ जीवन जिया है। मै यह कह सकता हूँ कि अहिंसा की ताकत हिंसा की अपेक्षा कई गुना ज्यादा है।

आपने अरविन्द केजरीवाल की चर्चा की है। मै आपसे सहमत हूँ । वर्तमान राजनैतिक वातावरण मे यदि कोई परिवर्तन की संभावना दिखती है तो एक मात्र "आंदोलन अरविन्द केजरीवाल" से दिखती है और यदि यथा स्थिति मे ही कोई आशा की किरण दिखती है तो वह मनमोहन सिंह के साथ जुडी है। भारतीय जनता पार्टी ने तो जिस तरह देश और समाज को भूलकर सत्ता संघर्ष का धिनौना नंगा नाच शुरू किया उसने तो उसे विपक्ष से भी बाहर कर दिया है। सत्ता का तो कोई प्रश्न ही नही है । कैश सब्सीडी तक के मुद्दे में टांग फंसाकर भाजपा ने अपना आंतरिक उतावलापन प्रकट कर दिया है। कांग्रेस बहुल सोच सोचकर कदम उठा रही है किन्तु सोनिया के पुत्र मोह के समक्ष सब गुड गोबर हो रहा है। अतः आशा की किरण या तो अरविन्द केजरीवाल दिखते है या नीतिश कुमार का भाग्य अथवा सोनियां जी का पुत्र मोह त्याग । देखिये आगे क्या होता है?

इन सप्ताहो मे कुछ प्रमुख घटनाएं घटित हुई। बाल ठाकरे की मृत्य के कुछ दिनों बाद ही शिवसेना के कार्यकर्ता श्री निकम, जो शायद विधायक या पार्षद भी है, उन्होने एक ठेकेदार को अकारण पीटा। स्पष्ट दिखा कि ठेकेदार किसी भी रूप से गलत नही था किन्तु श्री निकम ने उसे जानबूझकर पीटा। श्री निकम किसी भी रूप मे आवेश मे नही थे फिर भी ठेकेदार को पीटन से स्पष्ट हुआ कि बाल ठाकरे की मृत्यु के बाद कार्यकर्ताओ के बीच अपनी पहचान बनाने की होड शुरू हुई है और यह पहचान बनाने की होड मे ही फेस बुक को आधार बनाकर दोनो लडकियों को जेल भिजवाने तथा उनके चाचा के क्लिनिक मे तोडफोड करने की दादागिरी की गई या ठेकेदार को अकारण पीटा गया। आतंक का पर्याय बनने की दौड मे आगे निकलने के लिये अकारण मारपोट करके जेलजाना एक आवश्यक शर्त होती है क्योकि शिवसेना की जो पहचान बनी है उसमे बाल ठाकरे के जीवित रहते तक तो पहचान उग्रवाद तक ही सीमित थी। अब उनके शिष्य श्री ठाकरे से भी आगे जाना चाहते है जिसके लिये आतंकवाद की दिशा मे बढना आवश्यक है और शिवसैनिक धीरे धीरे उस दिशा मे बढ रहे है। शिव सैनिको के आतंक की दिशा पकडने से सर्वाधिक असुविधा होती है संघ परिवार को जिसमे भाजपा भी शामिल है। संघ परिवार की पृष्ठभूमि उग्रवाद तक तो जग जाहिर है किन्तु आतंकवाद की अतिवादी हिंसा मे वह शामिल नहीं रहता। भारतीय जनता पार्टी तो उग्रवाद से भी बचना चाहती है। पिछले दिनों जब फेसबुक प्रकरण ने ज्यादा जोर पकडा तो भाजपा खुल कर उसका समर्थन नही कर सकी। संघ के लोग भी गोल मोल ही उत्तर देते रहे । बाल ठाकरे यदि होते तो अलग बात थी किन्तु अब तो शिवसेना को सम्हल सम्हल कर ही कदम उठाना पडेगा। उग्रवाद की दिशा ही बहुत कठिन होती है । आतंकवाद की दिशा तो और भी कठिन है। आतंकवाद तभो सफल होता है जब उसे राज्य का गुप्त समर्थन या सहयोग मिले। बाल ठाकरे ने भाजपा की कीमत पर राज्य शक्ति पाई। राज ठाकरे को भी कहीं न कही महाराष्ट्र के कांग्रेसी नेताओ का समर्थन मिला। संघ परिवार स्वयं संकट मे है। उसकी स्वयं की उग्रवादी छवि ही कमजोर पडती जा रही है। अब प्रवीण तोगडिया आर अशोक सिंघल जैसे लोगों के मुंह से निकलने वाली आग मे वह गर्मी नही रही जो पहले थी। राजनीति मे भी संघ परिवार अछूत सरीखा दिखने लगा है। यदि शिव सेना को जरूरत पडी तो संघ उसकी सहायता योग्य नही दिखता। शिवसेना ने अच्छा किया जो बाल ठाकरे समाधि प्रकरण मे जल्दी ही कदम वापस खीच लिया। अन्यथा शिव सेना को आगे चलकर और दिक्कत ही होती। निकम सरीखे लोगों को सोच समझकर बढना चाहिये।

इस सप्ताह संसद मे एफ डी आई के गुण दोषों पर भी लम्बी बहस हुई। पूरे देश मे बडी संख्या मे लोगों ने इस लम्बी बहस को टी.वी. पर देखा। मतदान मे हार जीत मे तो दर्शकों को कोई उत्सुकता नहीं थी क्योकि सरकार का जीतना लगभग तय हो चुका था किन्तु एफ डी आई के गुण दोषों पर कुछ जानने समझने की उत्सुकता बहुता के मन मे थी। भारतीय जनता पार्टी के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नही था कि वह स्वयं अपने शासन काल मे एफ डी आई के पक्ष मे तर्क देती रही है। दूसरी ओर कांग्रेस पार्टी भी इसी प्रश्न पर चुप हो जाती थी कि जब वह विपक्ष मे थी तब एफ डी आई के विरोध मे क्यो थी? स्पष्ट दिखा कि दोनो ही दल एफ डी आई को भारत मे स्वीकृति दना भी आवश्यकता मानते थें और ऐसी स्वीकृति से संभावित जन आक्रोश से भयभीत भी थे । भाजपा ने उक्त भय से भयभीत होकर अपने कदम वापस कर लिये तो कांग्रेस भी तब तक इस दिशा मे कदम बढाने से हिचकती रही जब तक पूरी अर्थव्यवस्था के लिये ही संकट नही खडा हो गया। कांग्रेस समझती थी कि एफ डी आई एक ऐसा संवेदनशील मुद्दा है जो हम चुनावो मे पराजित कर देगा दूसरी ओर आर्थिक सुधारो की ओर तेज गति से बढे बिना भी बीस वर्ष पूर्व सरीखा संकट आ सकता है। अतः कांग्रेस पार्टी ने यह मार्ग चुना। संसद मे एफ डी आई के गुण दोषों पर चर्चा नही के बराबर हुई। कुल मिलाकर या तो कव्वाली के दो शायरो के बीच की लोक लुभावन नोक झोक थी अथवा सात आठ वर्ष सत्ता या विपक्ष मे रहते हुए इस संबंध मे प्रस्तुत विचारो की बार बार पुनरावृत्ति जिसमे दोनो पक्ष आज पलट कर खडे है। मायावती ने तो इस विषय को छूना ही आवश्यक नही समझा । सभी बडे नेताओ के भाषण सुनने के बाद भी कोई व्यक्ति यह नही समझ पाया कि एफ डी आई से क्या लाभ या हानि है। एफ डी आई समाज मे राज्य की भूमिका को कमजोर करेगा और पूंजीपतियो की भूमिका को मजबूत करेगा। पूंजीपतियो की वर्तमान राष्ट्र स्तर तक की सीमाओ से बढकर विदेशी पूंजीपतियों के आने का मार्ग खुलने वाला है। भारतीय जनता पार्टी का तर्क है कि भारत का गरीब ग्रमीण श्रमजीवी छोटा किसान या तो भारतीय पूंजीपतियो के चंगुल मे फंसा रहे या सरकार के । सरकार का कहना है कि सरकार इस व्यवसाय के बाहर निकल जायगी और सरकार की जगह विदेशी पूंजीपति ले लेंगे।

दो प्रकार की नीतियां हुआ करती है (1) सुरक्षात्मक (2) प्रतियोगितात्मक । स्वाभाविक है कि मजबूत वर्ग कमजोर वर्ग का शोषण करके स्वयं को मजबूत करता रहता है। ऐसी परिस्थिति मे कमजोर वर्ग को चाहिये कि वह मजबूत वर्ग से सुरक्षा के लिये दूरी बनाकर रखे क्योकि वह यदि किसी भी रूप मे नजदीक जायगा तो वह लाभ की जगह हानि ही उठायेगा। किन्तु जब कमजोर वर्ग और मजबूत वर्ग के बीच की दूरी कम रह जाती है तो कमजोर वर्ग मजबूत वर्ग से सुरक्षात्मक दूरी का मार्ग छोडकर प्रतियोगिता का मार्ग पकड लेता है। ऐसी प्रतियोगिता शेष समाज के लिये बहुत लाभदायक होती है। भारत के उद्योगपति अब वैसी स्थिति मे नही है कि वे दुनियां के उधोग पतियों से प्रतियोगिता न कर सकें। फिर बालमार्ट को विदेशो से आकर भारत मे प्रतियोगिता करना है, जबकि भारतीय उधोगपतियों को भारत मे ही रहकर यह काम करना है। यदि भारतीय उद्योगपति और विदेशी उद्योगपति आपस मे प्रतियोगिता करत है तो किसानो का भी लाभ निश्चित है और उपभोक्ताओ का भी। मेरे विचार मे भारतीय उद्योगपतियो को वालर्माट सरीखे विदेशी उद्योगपतियो की चुनौती का डटकर जबाब दना चाहिये। संसद मे चली लम्बी बहस मे ऐसे विचार कहीं भी शामिल नहीं थे।

भारत मे वर्तमान गरीब ग्रामीण श्रमजीवी छोटे किसान का वर्ग संकट में है। बडे उधोग इन्हे निगलते जा रहे है। एफ डी आई इस प्रवृत्ति को और बढायेगा। गरीब ग्रामीण छोटे किसान को तबाह करने मे वह भी शामिल हो जायगा यह सही है। किन्तु ऐसी प्रवृत्ति स बचाव का यह उचित मार्ग नही कि उन्हे कानून बनाकर रोक दिया जावे। यदि डीजल बिजली पेट्रोल गैस आदि सब प्रकार की कृत्रिम उर्जा को बहुत मंहगा कर दिया जाय तो आवागमन भी बहुत मंहगा हो जायगा और मशीनरीकरण भी मंहगा हो जायगा। तब ये बडे विदेशी या स्वदेशी उधोगपति संकट मे पडेंगे। तब गांव गरीब श्रमजीवी मजबूत होंगे। कोई भो राजनैतिक दल यह नही चाहता । भाजपा और साम्यवादी तो बिल्कुल भी ऐसा नही होने देते। ये दोनो एफ डी आई का विरोध सिर्फ विरोध करने के लिये ही करते है अन्यथा संसद मे इनके तर्को मे कोई दम नहों था। कुल मिलाकर संसद मे हुई दो दिनो की बहस मनोरंजन तो खूब रही किन्तु कोई वैचारिक बहस शुरू करने मे पूरी तरह असमर्थ रही।

इन्ही दिनो टीवी चैनल ''आज तक'' पर दो दिनो का हिन्दी मंच कार्यक्रम संचालित हुआ। विभिन्न वर्गो के चुने हुए उच्च स्तरीय विद्वान इन अलग अलग बहसो मे शामिल हुए । इन कार्यक्रमो मे एक विषय था लोक और तंत्र । वैसे तो दो दिनो की चर्चा के सभी विषय महत्वपूर्ण थे किन्तु सुनने के बाद ऐसा लगा जैसे इस विषय की कुछ विशेष तैयारी की गई थी।

इस पूरी चर्चा मे करीब पैतालीस लोग शामिल थे जिनमे सभी बहुत ही उच्च स्तर के अपने अपने क्षेत्र के विख्यात लोग थे। सहारा इंडिया के प्रमुख सुब्रत राय, भाजपा के रविशंकर जी, कांग्रेस के मणिशंकर अय्यर, विहार के मुख्यमंत्री नीतिश कुमार, राजनीति और उद्योग की घालमेल करने वाले अमर सिंह , प्रसिद्ध मीडिया कर्मी आलोक मेहता , चेतन भगत साहित्यकार जावेद अख्तर, सरीखी हस्तियां भी इस बहस मे शामिल थी। अन्य लोग भी ऐसी ही उच्च स्तरीय हस्तियों के समकक्ष ही थे।

मंच पर एक तरफ थे अरविन्द केजरीवाल और दूसरी तरफ थ रविशंकर जी और मणि शंकर अय्यर। बाकी लोग नीचे कुर्सियों पर बैठे थे। ऐसा लगा जैसे महाभारत काल का अभिमन्यु चक्रव्यूह मे प्रवेश कर चारो ओर से अकेला ही आक्रमणो का मुकाबला कर रहा हो। मंच पर बैठे रविशंकर जी तथा मणिशंकर जी अरविन्द केजरीवाल को अपने पारिवारिक सदस्य के रूप मे लगातार समझा रहे थे कि वे वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आक्रमण का मार्ग छोडकर इसके भाग बन जावे। दोनो ही ऐसी प्रेम पूर्ण बाते समझा रहे थे जैसे कि हमलोग अपने छोटे भाइयो को बिठाकर समझाते है। अरविन्द जी के प्रति उनके दिलो मे प्रेम उमड आया था। उनका कथन था कि अब अरविन्द जी के द्वारा राजनैतिक दल बना लेने के बाद वे उनके परिवार के ही सदस्य हो गये है। अरविन्द जी ने अब तक जो किया वह किया किन्तु अब उन्हे सारी लाइन छोडकर वह लाइन पकड लनी चाहिये जिस पर अन्य राजनैतिक दल चल रहे है।

दूसरी ओर सामने बैठे लोगो ने अरविन्द केजरीवाल के विरूद्ध अनेक कठोर प्रश्न भी किये तथा दबाव भी बहुत बनाया । जावेद अख्तर और आलोक मेहता तो ऐसे तीखे प्रश्न कर रहे थे जैसे कि बहुत पुराना बैर रहा हो । अमर सिह जी ने तो अपशब्द प्रयोग करते हुए हंगामा तक खडा कर दिया। लगता था जैसे एक तरफ लोक की ओर से हो अकेले अरविन्द केजरीवाल और शेष चौवालीस लोग तंत्र का प्रतिनिधित्व कर रहे हो। भले ही उसमे साहित्यकार राजनेता उद्योगपति खिलाडी कलाकार या अन्य कोई भी क्यो न हों।

अरविन्द नजरे घुमाकर चारो ओर देखते थे तो घेरे के अंदर उनको समझने वाला एक भी साथी मौजूद नही था। एक से बढकर एक तीर छोडे जा रहे थे। एक टीम लगातार आक्रमण कर रही थी तो दूसरी टीम समझा समझा कर अरविन्द जी को मार्ग बदलने हेतु प्रेरित कर रही थी। किन्तु ऐसी विषमस्थितियों मे भी अरविन्द जी ने धैर्य कही नही खोया। बहुत ही नपे तुले शब्दो म उन्होने ऐसे सधे हुए उत्तर दिये कि यह पूरी की पूरी टीम निरूत्तर हो जाती थी। प्रश्नकर्ता झुंझलाते थे, गुस्साते थे किन्तु अरविन्द के चेहरे पर कही न कोई आवेश दिखा न चिन्ता। लगा जैसे अरविन्द की कोई परीक्षा हो रही हो जिसमे वे पूरी तरह पास हो गये हो। मीटिंग समाप्त होने के बाद बाहर निकलते समय के चेहरे देख कर ऐसा लगा जैसे अरविन्द ने कुछ राहत महसूस की हो किन्तु अन्य सब लोगो के चेहरे कुछ मुरझाये हुए थे।

कुल मिलाकर अरविन्द केजरीवाल ने इस बहस मे भाग लेकर बहत अच्छा किया और संदेश दिया कि वे इन तंत्र से जुडे लोगो के प्रलोभन से प्रभावित नहीं होंगे।